ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 224-228

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

भारत की जातिगत जनगणना का महत्व (एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन)

पुष्पा कुमारी सोनी

शोध अध्येत्री– राजनीतिविज्ञान, मगध विश्व विद्यालय, बोध गया (बिहार) भारत

Received-09.12.2022, Revised-15.12.2022, Accepted-19.12.2022 E-mail: akbar786ali888@gmail.com

सारांशः ***जनता किसी समाज की मौलिक इकाई है, इसी के द्वारा समाज और राज्य का निर्माण होता है। भारत एक प्राचीन राष्ट्र है और भारतीय समाज का इतिहास लगभग 5000 वर्ष पुराना माना जाता है। समय–समय पर यहाँ सामाजिक व शासकीय व्यवस्थाओं में परिवर्तन होते रहे हैं। ब्रिटिश शासन से पहले यह राष्ट्र अनेक छोटी–छोटी रियासतों और राज्यों में बंटा हुआ था और सामन्तवादी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था अपने चरम पर थी। शासन और प्रशासन परंपरागत रूप से चलता था। राजा–महाराजा अपनी सीमाओं के विस्तार और अन्य कारणों से एक दूसरे के साथ लड़ते झगड़ते रहते थे और जनता का अनेक प्रकार से शोषण करते रहते थे। सोलहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में भारत में अंग्रेजों का प्रवेश हुआ और यहाँ के राजा महाराजाओं के आपसी संघर्ष का लाभ उठाते हुए धीरे–धीरे उन्होंने यहाँ अपना साम्राज्य स्थास्थापित कर लिया और कई सौ रियासतों को अपने अधीन कर लिया। अंग्रेजों ने भारत की जनता के विकास और अपने निजी हितों को साधने के लिए एक आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था यहाँ स्थापित की जो कि आज तक भी लगभग उसी रूप में उनके जाने के बाद यहाँ पर विद्यमान है।***

कुंजीभूत शब्द– सामन्तवादी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था, शासन, प्रशासन, परंपरागत रूप, प्रशासनिक व्यवस्था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्च्चात भी हम उसमें ज्यादा परिवर्तन नहीं कर पाये हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली का आरम्भ, अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों की स्थापना, सड़कों, नहरों और रेल यातायात जैसी आधारभूत सुविधाएं भी ब्रिटिश शासन में ही भारत की जनता को उपलब्ध हुई, लेकिन वे भी उसी तरह जनता का शोषण करते रहे, जिस तरह पहले से होता था। अत्यधिक लगान और बेगार जैसी शोषणकारी नितियाँ फिर भी चलती रही। 1857 में अंग्रेजों के विरुद्ध मेरठ से स्वतंत्रता आन्दोलन का आगाज हुआ। इस क्रांति से अंग्रेजों के मन में एक भय उत्पन्न हुआ। भारत की जनता पर निर्विघ्न शासन करने के लिए उन्होंने यहाँ की जनसंख्यात्मक व सांस्कृतिक विशेषताओं को जानने की आवश्यकता का एहसास हुआ। इसलिए 1882 में लार्ड रिपन के कार्यकाल में भारत की जनता की अनेक विशेषताओं के आधार पर गणना करायी गयी, जिसे जनगणना का नाम दिया गया। इसमें जातिय विशेषताओं अर्थात जातियों की गणना भी की गयी। अनेक क्षेत्रों में पायी जाने वाली जातियों की विशेषताओं और संस्कृति के बारे में भी अनेक बुद्धिजीवियों और विद्वानों द्वारा सूचनाएं प्राप्त की गयी। इस प्रकार भारत में जनगणना का प्रारंभ अंग्रेज शासकों द्वारा अपना शासन कुशलतापूर्वक चलाना था, न कि यहाँ के सुनियोजित विकास के लिए।

जाति भारतीय सामाजिक संरचना की एक प्रमुख विशेषता है और यहाँ के लोग जातिगत आधार पर बंटें हुए हैं तथा इनमें असमानता और वैमनस्य के भाव पाये जाते हैं। यह समाज का एक कमजोर पक्ष है और इसी को पकड़कर समाज को तौड़ा जा सकता है। "फूट डालो और राज्य करों' की उनकी प्रशासनिक नीति रही है, इसलिए उन्होंने जातियों की गणना और उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ–साथ इनकी ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि की भी अलग से जांच करायी। 1931 में जे०एच० हट्टन, जो कि एक प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी के साथ–साथ एक समाजवेत्ता भी थे, के निर्देशन में भारत की जनगणना करायी गयी, जिसमें जातियों की संख्या और उनकी जनसंख्या की गणना भी की गयी। हट्टन के द्वारा भारत की जाति व्यवस्था, उसकी उत्पत्ति और विशेषताओं पर अलग से भी प्रकाश डाला गया है, जो उनके प्रमुख लेखों और कृतियों के रूप में उपलब्ध है। इस जनगणना में पाया गया कि भारत में लगभग 3000 जातियाँ निवास करती हैं। 1931 क बाद 1941 में भारत की जनगणना दूसरे विश्वयुद्ध के कारण नहीं हो सकी और 1951 में स्वतंत्र भारत में पहली बार जनगणना की गयी। स्वतंत्र भारत के नीति– निर्धारिक भारत को समानता और स्वतंत्रता पर आधारित विकसित राष्ट्र बनाना चाहते थे। अतः 1951 की जनगणना के आधार और उद्देश्य ब्रिटिश कालीन जनगणना से भिन्न थे।

जनगणना का उद्देश्य भारतीय समाज के सुनियोजित विकास का था, न कि निर्बाध शासन करने का। भारतीय जनता की कुल संख्या, उसमें पायी जानी वाली अनेक विविधताओं और विशेषताओं को जानकर ही भारतीय जनता का सुनियोजित विकास किया जा सकता था। गरीबी–अमीर, सकल घरेलू उत्पादन, प्रति व्यक्ति आय, कुल कृषि भूमि और उसका विभाजन जैसे अनेक बुनियादी आधारों पर भारत की जनगणना करायी गयी, लेकिन इसके जातिगत आधार को यह मानते हुए नहीं अपनाया गया कि इससे भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होगी। इस प्रकार 1951 की जनगणना 1931

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

की जनगणना की कई अर्थों में भिन्न रही। इसके बाद प्रत्येक 10 वर्षों में भारत की जनगणना होती रही। जनगणना से प्राप्त आंकड़ों में से आम लोग केवल तथ्यों से ही परिचित हो पाते हैं, जैसे कुल जनसंख्या, जनसंख्या वृद्धि दर, शिक्षा कर स्तर, लिंग अनुपात आदि। शेष आंकड़ें सरकारी कार्यालयों के उपयोग में आते हैं। यदि जनगणना के प्रकारों पर समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रकाश डाला जाये, तो हम पाते हैं कि यह सुनियोजित सामाजिक विकास का एक अत्यन्त महत्त्वूर्ण साधन है। इसके द्वारा समाज में पायी जाने वाली विविधताओं और असमानताओं की वैज्ञानिक जानकारी हमें प्राप्त होती है और समाज की स्पष्ट तस्वीर हमारे सामने आ जाती है, जिससे सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर सामाजिक विकास के कार्य किए जा सके।

भारतीय सामाजिक संरचना–भारतीय समाज एक प्रचीन समाज है परंपरावाद और बंद समाज के लक्षण इसकी प्रमुख विशेषता है, क्योंकि इसकी सरंचना और प्रकार्य में जाति विशेष स्थान रखती है। यद्यपि हिन्दू दर्शन कर्म के सिद्धान्त में विश्ध्वास करता है लेकिन व्यावहारिक दृष्टिकोण में कर्म का निर्धारिण जन्म के आधार पर होता है, न की योग्यता और क्षमता के। इस प्रकार हिन्दू धर्म और जाति व्यवस्था एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ तक जाति व्यवस्था की उत्पत्ति का प्रश्न है, इसका स्पष्ट व तथ्यपरक उत्तर किसी के पास नहीं है।

अधिकतर विचारक मानते हैं कि आर्यों और द्रविड़ों के संघर्ष के पश्चात भारत में समाज का वर्णों के रूप में विभाजन हुआ और कालान्तर में इन वर्णों में अनेक उपवर्णों का उदय हुआ, जिन्हें जाति का नाम दिया गया। आज भी भारत में वर्ण है, लेकिन व्यवस्था नहीं है। क्योंकि लोगों ने वर्णों के अनुरूप व्यवसाय बंद कर दिए हैं। जाति की उत्पत्ति के संबंध में धुर्ये ने एक संभावना व्यक्त की है कि जातियों की उत्पत्ति व्यवसाय, निवास स्थान के नाम व विवाह की दशा पर हुई है। जैसे वे उदाहरण देते हैं कि धातु का काम करने वाली जातियों के नाम जैसे लोहार, ताबट, कासार व ठठेरा उस धातु से निकलते हैं जिसका वे उपयोग करते हैं, जैसे लोहा, तांबा, कांसा तथा पीतल।

कुम्भार, कुम्बार या कुम्हार एक जाते का नाम है और इसका अर्थ होता है वह व्यक्ति जो कम्भ बनाता है। नाई जाति का नाम या तो नाई के संस्कृत पर्याय से निकला है या इसका अर्थ बाल काटने वाला होता है। चमड़ें का काम करने वाली जाति का नाम चमार या चांभर। चूहें खाने वाली जाति का नाम मुसहर। भंगी जो मैला उठाने का समाजोपयोगी कार्य करते हैं उसे कहते हैं। यह नाम भी संभवतः वह जाति के प्रति घृणा के प्रतीक के रूप में लागू किया गया है। इसका अर्थ भग्न जाते या जातिच्युत होता है।

अधिकांश जातियों में ऐसी उपजातियाँ विद्यमान है, जो किसी प्राचीन नगर या स्थ्थान का नाम धारण कर लेती है जैसे कन्नौजिया का नाम कन्नौज से, चौरसिया, मिर्जापुर के चौरासी परगनें से, जायसवाल, रायबरेली के जायस कस्बे से भिलाल राजपूत पुरुषों तथा भील स्त्रियों की संतान के रूप में प्रसिद्ध है। इस प्रकार वर्णानुसार व्यवसायों को लंबें समय तक करते रहने वाले समूहों को उनके व्यवसाय के नाम के अनुसार नाम दिया गया। रक्त की शुद्धता, समान संस्कृति व व्यवसाय और समान आर्थिक सामाजिक हैसियत के आधार पर अंतः जातीय विवाह का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। व्यवसाय परिवर्तन पर कठोर प्रतिबंध लगाये गए जिससे जाति व्यवस्था कठोर हो गयी।

व्यवसाय और जाति एक सिक्के के दो पहलू बन गए, इसलिए इसका निर्धारण जन्म से होने लगा अर्थात जिस परिवार में बच्चे का जन्म होगा वही उसकी जाति होगी। जाति व्यवस्था समाज का पदसौपानिक क्रम में विभाजन करती है, अर्थात निम्नता और उच्चता का निर्धारण जाति के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक व्यवसाय की आर्थिक, सामाजिक और सांरकृतिक स्थिति भिन्न–भिन्न होती है इसलिए पदसौपान क्रम में व्यवसाय महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ब्राह्मणों की स्थिति इसलिए उच्च स्थिति मानी जाती है क्योंकि उन्हें प्रत्यक्ष भगवान का प्रतिनिधि माना जाता है। राजपूतों को इसलिए उच्च स्थिति प्राप्त है, क्योंकि वे शासक वर्ग से संबंधित है। वैश्य की सम्मानजनक स्थिति में है क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है। सबसे निम्न स्थान पर वे जातियाँ है, जिनके व्यवसाय आर्थिक और सांस्कृतिक, धार्मिक रूप से निम्न है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी जाति के व्यवसाय की प्रकृति उसकी सामाजिक प्रास्थिति का निर्धारित करती है जैसे शूद्रों में भी त्यज्य और अन्त्यज्य जातियाँ पायी जाती है।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन और वर्तमान परिदृश्य– जाति व्यवसथा और इसमें हो रहे, परिवर्तन निरंतर समाज वैज्ञानिकों के अध्ययन का विषय रहे हैं। एम.एन. श्रीनिवास, जी.एस.धुर्ये और श्यामाचरण दुबे जैसे भारतीय समाजवत्ताओं के साथ–साथ जे.एन. हट्टन, एफ, जी.बेली जैसे विदेशी अध्ययनकर्ताओं ने भी भारतीय जाति व्यवस्था का क्षेत्र आधारित अध्ययन करके इसके संबंध में महत्तवपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किए है। एम.एन, श्रीनिवास ने जाति व्यवस्था के संबंध में एक महत्तवपूर्ण तथ्य यह प्रस्तुत किया है कि भारत में सभी जातियों की स्थिति सभी स्थानों पर एक समान नहीं है। कई स्थानों पर ब्राह्मणों की स्थिति कृषक जातियों से निम्न मानी जाती हैं। दूसरे निम्न जातियों के द्वारा संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के द्वारा अपने आपको

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

उच्च स्थिति प्रदान करने का दावा प्रस्तुत किया जा रहा है, लेकिन उच्च जातियाँ अपनी प्रास्थिति को कायम रखने के लिए उन्हें इस प्रक्रिया से रोकती है। स्वतंत्रता प्रापति के पश्चात भारत के सभी नागरिकों को स्वतंत्रता और समानता जैसे मौलिक अधिकार प्राप्त हुए हैं, इनमें अवसरों की समानता भी सम्मिलित है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति का हो अपना व्यवसाय चुनने के लिए स्वतंत्र है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1956 के अनुसार एक वयस्क स्त्री और पुरुष आपस में विवाह कर सकते हैं चाहे उनके जाति और धर्म अलग–अलग क्यों न हो। सरकारी नौकरियां प्राप्त करने का भी सबको समान अवसर प्राप्त हैं।

आजादी के साठ वर्षों में कुछ हद तक जातीय असमानताएं कम हुई है। आरक्षण की व्यवस्था ने निम्न जातियों के लोगों को उच्च प्रतिष्ठित पदों पर आसीन होने का अवसर प्रदान किया है. जिससे उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सूधार हुआ है। जिन जातियों के सदस्यों के अध्ययन और अध्यापन पर प्रतिबंध था, वे अब अध्ययन और अध्यापन कर रहे है, जिससे सामाजिक दूरी घटी है। कठोर सामाजिक नियमों के कारण अंतर्जातीय विवाहों की संख्या में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हई है, जो जाति व्यवस्था को लचीला बनाने के लिए आवश्यक है, बल्कि जातिगत चेतना बढ़ने के कारण जातिवाद में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।

यह वास्तव में, सामाजिकता की मूल भावना के विरूद्ध है। जाति व्यवस्था में इतनी बुराई नहीं है, जितनी की जातिवाद में है। आज भी अनेक पेशों पर परंपरागत रूप से चली आ रही जातियों को ही एकाधिकार प्राप्त है। पुरोहिताई का कार्य केवल ब्राह्मण ही करते है और सफाई जैसा घृणित समझा जाने वाला कार्य केवल कुछ शूद्र जातियों के हिस्से में ही आता है। आभी पिछले दिनों उ0प्र0 में एक महत्त्वपूर्ण घटना हुई। प्रदेश के सभी गाँवों को स्वच्छ रखने के लिए प्रत्येक ग्राम पंचायत स्तर पर सफाई कर्मचारियों की सरकारी भर्ती की गयी बेरोजगारी की समस्या से ग्रसित अनेक युवाओं ने इसमें आवेदन किए, जिसमें समाज की सभी जातियों के लोग थे। अनेक उच्च जातियों के युवा भी इसमें नियुक्ति पा गए, लेकिन सफाई का कार्य उनकी सामाजिक प्रास्थिति के अनुरूप नहीं था।

एक ब्राह्मण का पुत्र सफाई का कर्म करे यह संभव ही नहीं है, इससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा दाव पर लगती है, लेकिन दूसरी ओर रोजगार भी आवश्यक है इसलिए उन्होंने इसके लिए एक आसान तरीका खोज लिया और वह था भ्रष्टाचार, जिसके द्वारा बिना सफाई का काम करे वेतन पाया जा सकता था। अब उन्होंने ग्राम प्रधान और अधिकारियों से तालमेल करके किसी सफाई करने वाली जाति के व्यक्ति को थोड़े से पैसे देकर सफाई का काम कराना प्रारम्भ कर दिया शेष राशि आपस में बांट ली जाती है। इस प्रकार सफाई का काम आज भी परंपरागत जातियाँ ही कर रही हैं । वैवाहिक नियम जाति व्यवस्था को बनाए रखने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन आज भी चाहे व उच्च शिक्षित परिवार हो या अशिक्षित गरीब, विवाह के मामले में सजातीय होना अपरिहार्य है। अन्तर्जातीय विवाह करने वालों को हीनता की दृष्टि से देखा जाता है और उनसे उत्पन्न संतानों की स्थिति आर्य पुरुष और दविड़ कन्या से उत्पन्न संतानों जैसी हो जाती है। इसलिए अभी जाति व्यवस्था में परिवर्तन या समाप्ति की कोई संभावनवा नजर नहीं आती केवल इसमें सुधार किया जा सकता है, जातिवाद को रोका जा सकता है। एक प्रश्न और बहुत ही अहम है जिसमें एम.एन, श्रीनिवास कहते हैं कि "जब जातियाँ लुप्त हो जायेगी तो हिन्दूवाद का क्या होगा? इसका उत्तर आसान है लेकिन सब चुप है।

जातिगणना का औचित्य– प्रारम्भ में हम जनगणना के उद्देश्यों पर चर्चा कर चुके हैं ओर पाते हैं। कि अंग्रेजी शासन की जनगणना और स्वतंत्र भारत की जनगणना के उद्देश्यों में मौलिक भिन्नता है । वर्तमान में जनगणना का उद्देश्य जनसंख्या की प्रकृति को जानकर उसका सुनियोजित विकास करना है।

इस समय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सातवीं बार भारत में जनगणना की प्रक्रिया चल रही है, जिसमें भारत के नागरिकों से संबंधित अधिकतम जानकारियाँ प्राप्त करने की योजना है जैसे– (1) मकान सूची– मकान की स्थिति, पानी के श्रोत, शौचालय, बिजली, रसोईघर, रेडियो, टी.वी. कम्प्यूटर, गाड़ी आदि। (2) परिवार अनुसूची– धर्म, जाति, सामान्य बीमारी और उनके उपचार का ढंग, दीर्घकालीन बीमारी और उनके उपचार को सूविधाएं आदि। (3) व्यक्ति की आदतें– तम्बाकु, गुटका, सिंगरेट, शराब आदि का सेवन, लेकिन उपरोक्त आधारों में से जातिगत जनगणना करने पर एक गतिरोध उत्पन्न हुआ। 09 सितम्बर 2010 को प्रणव मुखर्जी की अध्यक्षता में मंत्रियों के एक समूह ने इसकी स्वीकृति प्रदान कर दी है। यह कार्य जनगणना के बायोमीट्रिक चरण में होगा, जो कि दिसम्बर में संभावित है। अनेक सामाजिक संगठनों, विचारकों और राजनीतिज्ञों में इसके प्रति मतभेद है कि जाति आधारित जनगणना सामाजिक विकास में बाधा डाल सकती हैं। इसके विरोध में कुछ संगठन और विचारक यह तर्क दे रहे हैं कि इससे समाज में असमानता बढ़ेगी, जातिवाद को बढ़ावा मिलेगा और समाज में वैमनस्य की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

जातिगत जनगणना के विरोध में विभिन्न चिंतकों और संगठनों के तर्कों का निम्न बिन्दुओं द्वारा संक्षेप में वर्णन किया जा सकता है।

(1) भारत एक जाति और धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है हमारा धर्म और जाति केवल भारतीय है, इसलिए जातिगत जनगणना करने का कोई औचित्य नहीं है।

(2) यह एक प्रकार का राजनैतिक षडयंत्र है, जिसके द्वारा विभिन्न राजनैतिक दल अपना–अपना हित साधने के लिए भारत में पायी जाने वाली विभिन्न जातियों का संख्याबल जानना चाहती है, जिससे जातिगत राजनीतिक समीकरण बनाए जा सकें। अतः यह कार्य भारत के लोकतंत्रात्मक गणराज्य के लिए घातक है, और लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध है।

(3) भारत की जातियों को पहले से ही सामान्य, पिछड़ी और अनुसूचित जातियाँ की श्रेणी में रखकर निम्न और पिछड़ी जातियों को अरक्षण देकर उनके विकास के लिए कार्य किए जा रहे हैं, तो अब फिर जातियों को गणना की क्या आवश्यकता है?

(4) भारतीय समाज विकास के पथ पर अग्रसर हैं यहाँ से जातीय भेदभाव धीरे–धीरे समाप्त होते जा रहे हैं, ऐसी स्थिति में जातिगत जनगणना की जाती है, तो यहाँ जतिवाद को बढ़ावा मिलेगा। जातीय वैमनस्य बढ़ जाएंगे और भारत का विकास रुक जायेगा।

अतः इनकी चिन्ता है कि जातिगत जनगणना से समाज में विघटनकारी तत्व सक्रिय हो जायेंगे, समाज में जातिगत संघर्ष बढ़ जायेगा और भारत की एकता और अखंडता को क्षति पहुँचेगी।

जातिगत जनगणना के पक्ष में जो तर्क दिए जा रहे हैं, वे कुछ इस प्रकार हैं–

(1) भारत एक जाति प्रधान देश है। यहाँ पर व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक स्तर जाति आधारित है। अतः जब तक यह पता नहीं चलेगा कि किस जाति के लोग निम्नतम और पिछड़ा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तब तक उनके विकास की योजनाएं नहीं बनायी जा सकतीं। अतः जातिगत जनगणना आवश्यक है।

(2) उच्च जातियों के व्यक्ति समाज में अपनी यथा स्थिति बनाए रखने के लिए इसका विरोध कर रहे हैं, क्योंकि औपचारिक जनगणना के द्वारा वास्तविक स्थिति सभी के सामने आ जायेगी और निम्न जातियों के विकास से उनकी स्थिति में परिवर्तन हो जायेगा।

(3) यदि किसी बीमारी और कमी को दूर करना हो तो उसकी वास्तविकता जाननी चाहिए तभी उसका इलाज किया जा सकता है। जाति मतभेद और जातिवाद भारतीय समाज में पायी जाने वाली एक बुरी बीमारी है। अतः इसका विनाश करने के लिए इसकी जड़ों तक पहुँचना होगा, वास्तविकताओं का पता लगाना होगा, जो कि व्यवस्थित आंकड़ों के द्वारा ही पता चल सकता है। अतः जातिगत जनगणना आवश्यक है।

इस प्रकार ये विचारक भारत के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए जातिगत जनगणना को आवश्यक और स्वागत के योग्य उठाया गया कदम मानते हैं।

राजनैतिक दृष्टिकोण– इस दृष्टिकोण से हम इसके सैद्धांतिक अथवा पद्धतिशास्त्रीय और व्यवहारिक दोनों प्रकार के दृष्टिकोण से विचार करेंगे।

सैद्धांतिक दृष्टिकोण से यह माना जा सकता है कि ''राजनीतिशास्त्र, राजनैतिक वास्तविकता' का अध्ययन करने वाला विज्ञान है और ये वास्तविकताएं वैज्ञानिक ढंग से पता की गयी हों दार्शनिक ढंग से नहीं।

जनगणना की प्रक्रिया में तटस्थ होकर ही सूचनाएं प्राप्त की जाती है। घर–घर जाकर सूचनाएं प्राप्त की जाती है, जिनमें बड़ें पैमानें पर कोई फेर–बदल नहीं किया जा सकता। अतः यदि समाज की वास्तविक तस्वीर देखनी है तो जाति तो क्या जितने प्रकार की विविधताएं भारतीय समाज में पायी जाती है उन सभी के आधार पर जनगणना की जानी चाहिए। भाषा, धर्म, जाति, व्यवसाय, वार्षिक पारिवारिक आय और यहाँ तक कि वे किस प्रकार भोजन करते हैं, शाकाहारी हैं या मांसाहारी यह भी जनगणना के आधार होने चाहिए। बहुत से ऐसे भी लोग हो सकते हैं, जो किसी भी धर्म को न मानते हों, नास्तिक हों या हिन्दू या मुसलमान होते हुए भी कभी मंदिर या मस्जिद में न जाते हो। इन सभी सूचनाओं का होना समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए अतिआवश्यक है। अतः सैद्धांतिक दृष्टिकोण से भारत की जातिगत जनगणना कराने में कोई आपत्ति नहीं है।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से हमें यह जानने का प्रयास करना होगा कि 1931 के 80 वर्ष बाद भी ऐसी कौन–सी दशाएं हैं, जो परिवर्तित नहीं हुई है? जाति व्यवस्था को बनाए रखने और जातिवाद को बढ़ावा देने वाले तत्व कौन से हैं? दूसरे भारत की कुल आबादी का कितना बड़ा हिस्सा वह जानता है कि उनकी जातिगत गणना की जा रही है और इसके क्या लाभ–हानि है? इसके बाद हमें तटस्थ होकर इसके लाभों और हानियों पर विचार करना होगा।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

हिन्दू धर्म और जाति एक सिक्के के दो पहलू हैं, यदि जाति व्यवस्था को समाप्त करने की बात की जाती है, तो हिन्दू धर्म का क्या होगा? जब भगवान के प्रतिनिधि के रूप में ब्रह्मण के सथान पर भंगी आ जायेगा, तब हिन्दू धर्म का क्या होगा? जो लोग जाति व्यवस्था को समाप्त करने की बात करते हैं वे समाज के वास्तविक धरातल पर नहीं है। इस व्यवस्था का दूसरा पहलू आर्थिक है उसे सुधारा जा सकता है। आज भी निम्न जातियों के लोग गरीब है, दलितों के पास पक्के मकान नहीं हैं, उनके बच्चे सरकारी स्कूल पढ़ने नहीं 'मिडडे–मील' खाने के लिए जाते हैं।

इस स्थिति को सुधारा जा सकता है। इसलिए यह पता लगाना आवश्यक है कि कौन बच्चा स्कूल नहीं जाता या किस स्तर पर पढ़ाई छोड़ देता है और क्यों? कौन–सी जातियाँ परंपरागत पेशों में लगी हुई हैं? और इनसे क्या आय होती है? आदि। अतः जातियों की सामाजिक आर्थिक जनगणना की जानी चाहिए केवल जाति का पता करने से काम नहीं चलेगा। इसमें एक तथ्य यहाँ और भी है कि क्षेत्रवार अनौपचारिक जातिगत सूचनाएं आम से खास व्यक्ति के पास मौजूद है।

किस गाँव में कौन–कौन–सी जातियाँ की कितनी कितनी जनसंख्या है? इसको सभी क्षेत्रीय लोग जानते हैं। अतः यदि औपचारिक व वैधानिक ढंग से गणना कर जाये, तो कोई नुकसान मालूम नहीं होता है और यह तो निश्चत तौर पर कहा जा सकता है कि चाहें राजनैतिक पार्टियां और राजनेताओं, तथाकथित बुद्धिजीवियों उच्च पदस्थ लोगों को कुछ हॉनि पहुँच जाये गरीब लोगों को कोई हॉनि नहीं होगी, क्योंकि जिस स्थिति में वे आज है उनकी स्थिति उससे खराब नहीं हो सकती। जहाँ तक जातिवाद का प्रश्न है, इसे आर्थिक विकास और शिक्षा के प्रसार से कम किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्री निवास एम०एन० – 'आधुनिक भारत में जाति', राजकल प्रकाशन नई दिल्ली–2000.
2. रंगनयकम्मा – 'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफी नहीं, अम्बेडकर भी काफी नहीं, मार्क्स जरूरी है। राहुल फाउण्डेशन– लखनऊ 2008.
3. घुर्ये डॉ० गोविन्द सदाशिव' जाति, वर्ग और व्यवसाय, राजपाल एण्ड सन्स–1961.
4. सिन्हा सच्चिदानन्द जाति व्यवस्था मिथक, वास्तविकता और चुनौतियां–राजकमल प्रकाशन–2006.
5. Hutton, J.H. Caste in India, Oxford University Press, Bombay 1977.
6. Atal Yogesh, The Changing Frontiers of Caste, National Publishing House, Delhi, 1968.
7. Bailey, F.G., Caste and Economic Frontier, University Press Manchester 1957.
8. Gould Harold, The Hindu Caste System, Chankya Publications, New Delhi, 1987.
9. Kalonda Panline, Caste in Contemporary India, Rawat Publications, Jaipur, 1967.

*****

संदर्भ ग्रन्थ सूची